लोकगीतों का भाषिक सौंदर्य

डॉ. नीता श्रीकांत दौलतकर,
अतिथि प्रवक्ता,
कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड
Email: neetadaulatkar@gmail.com

डॉ.नीता श्रीकांत दौलतकर,लोकगीतों का भाषिक सौंदर्य,आखर हिंदी पत्रिका,खंड 1/अंक 1/सितंबर 2021,(19-26)

भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम भाषा है। भाषा के बगैर कोई भी साहित्य कृति सृजित नहीं हो सकती। लोकगीतों की भाषा के सौंदर्य के बारे में श्री कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोकगीतों की प्रस्तावना में लिखते हैं- "प्राचीन युग की कविता का प्रधान गुण है स्वाभाविकता, स्वच्छंदता तथा सरलता। वह उतनी ही स्वाभाविक थी जितना जंगल का फ़ूल। वह उतनी ही स्वच्छंद थी जितनी आकाश में उडनेवाली चिडिया। वैसी ही सरल थी जैसा गंगा का प्रवाह। उस समय की कविता का जो आज अवशेष रह गया है, वह हमें ग्राम साहित्य के लोकगीत के रूप में उपलब्ध होता है।"

लोकगीतों की भाषा के संदर्भ में डॉ. सरोजिनी बाबर 'मराठीतील स्त्रीधन' में लिखती हैं- "ये लोकगीत ऐसे हैं, जिन्होंने समय के प्रवाह में अमर होकर रहने की शक्ति पायी है। हर समय लोकप्रिय होनेवाली और मानवी मन के स्थायीभाव पर आधारित विषयों की रचना इनमें की गई है। एक बार सुनते ही मन पर अंकित करने तथा तुरंत गुनगुनाने के लिए प्रवृत्त करने का सामर्थ्य इन गीतों में है। मुख्यत: इनमें घरेलु तथा सशक्त ऐसी लोकभाषा का मनोहर कला-कौशल्य है। उनकी काव्य-शक्ति जैसी अमोघ है वैसी ही अव्याज मनोहर भी।"१ लोकगीतों की भावनाओं में माधुर्य ओतप्रोत है, कल्पनाओं का सौंदर्य है। रचना में सहजता है, अपनापन है, उसकी भाषा में असीम ऐश्वर्य है।

"अत: स्त्री-गीतों की रचना उक्ति-वैचित्र्य से भरी हुई है। प्रसंगानुरूप वह कोमल एवं कठोर है। जितनी मधुर है उतनी ही करारी है। शब्द-संक्षेप है तो उसमें अर्थ-विस्तार भी है, और भावनाओं को कल्पना के संपुट में ढालने की कला है। समान भावना होने के बावजुद विभिन्न पद्धतियों से रचने का सामर्थ्य है। हर पंक्ति में एक अलग ही भाव-छटा है और वर्णन की पद्धति कुछ अलग ही है। इन वर्णनों के

लिए ली गई कल्पना और दिए गए उपमान आस-पास की दुनिया में के ही हैं। चारों ओर फ़ैली हुई जिंदगी से लिये गये हैं। इसमें की भावना जैसी जिंदा है, वैसी ही सजावट भी संजीवक है।"२

लोकगीतों की तर्ज इतनी मन-लुभावनी होती है कि सुननेवाला स्वयं को भुल कर उसमें खो जाता है, तल्लीन हो जाता है और अनजाने में ही गानेवालों के स्वर में अपना स्वर मिला देता है। इनमें भावना और कल्पना का अनोखा संगम है। ये स्त्री-गीत चार दिवारी में बंधी स्त्री के मन के लिए एक विश्राम है, आनंद है, उनकी अपनी सृजनात्मकता है जिससे उसका जीवन केवल आनंदित ही नहीं सुंदर भी बन जाता है। पूरा समाज भाव-विभोर होकर उसका आनंद उठाता है। इसी आनंद, भाव-विभोरता ने आज के फ़िल्मों में लोकगीतों को लेने के लिए प्रवृत किया है। और आज ये गाने 'हीट' बन गये हैं, हर एक के ज़ुबान पर चढ़ गये हैं।

इन गीतों का सौंदर्य पंडित रामनरेश त्रिपाठी स्त्रियों के कण्ठ को मानते हैं। उनके विचारानुसार- "ये गीत जब स्त्री-कण्ठ से निकलते हैं, तब इनका सौंदर्य, इनका माधुर्य और इनका उन्माद कुछ और ही हो जाता है। इससे गीतों का आधे से अधिक रस तो स्त्रियों के कण्ठ में ही रह गया। खेद है, मैं उसे कलम की नोंक द्वारा अपने पाठकों तक नहीं पहुँचा सका। युरोप में यह काम फ़ोनोग्राफ़ के रिकार्डों से लिया जाता है। विधाता ने स्त्रियों के कण्ठ में जो मिठास रख दी है, जो लचक भर दी है, उसे मैं लोहे की लेखनी में कहाँ से ला सकता हूँ?"३

कितना सही कहा है उन्होंने! जब कोई विरहन विरह गीत गाती है, किसी नव-विवाहिता की बिदाई पर बिदाई गीत गाया जाता है, कोई बंध्या पुत्र-प्राप्ति के लिए किसी देवी-देवताओं को मनाती है उस समय की वेदना, पीडा जितनी मर्मान्तक होती है वह क्या सिर्फ़ लोकगीतों को पढ़ने से महसूस हो सकती है? कभी नहीं! उसके लिए उस माहौल में गाया हुआ गीत सुन कर ही मनुष्य उस वेदना को समझ सकता है, उसके साथ आँसू बहा सकता है। इस में भाषा के अलावा स्वर का बहुत बडा योगदान होता है।

ऐसे ही प्रेम के गीतों का माधुर्य, कोमलता, कसक, माँ की लोरी में दृगोचर होने वाला वात्सल्य, उसमें आये उतार-चढ़ाव उसे प्रत्यक्ष सुनने में ही प्रतीत होता है। केवल लिपिबद्ध लोकगीतों के आधार पर इनके कवित्व का, सौदर्य का, कोमलता का, मार्दव का, विरह का, पीडा का, ताल-लय का, जिस मनोभाव से उन्हें गाया जाता है उन भावनाओं का अध्ययन संपुर्ण नहीं हो सकता।

वात्सल्य रस का एक गीत दृष्टव्य है- स्त्री जब गर्भवती होती है, उसके मन में संतान के प्रति वात्सल्य भाव जागृत होने लगता है। इसीलिए संतान को जन्म देते समय जानलेवा पीडा को सह कर भी वह खुश होती है। संतान का मुख देखते ही अपनी सारी पीडा भूल जाती है। अपने पुत्र में नटखट कृष्ण-कन्हैया को देखने लगती है। उसके लिए लोरियाँ, झूले के गीत गाती है जो वात्सल्य से परिपूर्ण होते हैं। उदा-

"यशोदा घूमि-घूमि दूधवा पियावेली चंदा के बोलाबेली।
सोने के हरियवा यशोदा मंगावेली जलवा भरावेली हो
ए बचवा लपकी-झपकी धरे थरियवा त चंदा नाही मिलेले।
चंदा हो गइले अलोप प कुवर सपटी गइले हो।
ए बचवा लोटी पोटी पोटी रोदना पसारेले चंदा नाही मिलेले।
चुप होरव ए बाबु चुप होरव जनि तुहु रोवहू हो।
ए बाबु चंदा सरीखे रानी रुक्मणि त उन्हीं से बियाहब॥"४

इस गीत में एक माँ का अपने बेटे को दूध पिलाने के लिए की गई भागमभागी, बेटे का चंदा के लिए रुठना, माँ का उसे मनाना, उसके लिए कई प्रलोभन देना आदि का सजीव चित्रण वात्सल्य रस को द्विगुणित करता है। इसमें 'चंदा सरीखे रानी रुक्मणि' में उपमा अलंकार है। घूमि-घूमि, लपकी-झपकी, लोटी-पोटी-पोटी, पियावेली, बोलाबेली, मंगावेली, भरावेली, में अनुप्रास अलंकार के साथ-साथ 'इ' प्रत्यय लगा कर कोमलता लाई गई है। इस गीत में भाषा सौंदर्य तथा नादसौंदर्य का अनूठा संगम दिखाई देता है।
ऐसा ही एक विरह गीत दृष्टव्य है-

"घरवा रोवे घरनी ए लोभिया, बाहारवा राम हरिनिया।
दाहावा रोवे चाकावा-चकइया, बिछोववा कइले निरमोहिया।"५

इस गीत में विरहिनी अपनी दयनीय स्थिति को बतला रही है। पति के बिना उसे सारा घर काटने दौड रहा है। ऐसे में वह परदेश गये पति से शिकायत करते हुए कह रही है- हे लोभी, निरमोही तुम्हारे परदेश जाने पर केवल मैं ही नहीं अन्य कितने जीव तुम्हारे वियोग में बेचैन हो रो रहे हैं। घर में तुम्हारी घरवाली रो रही है तो बाहर हरिनी रो रही है। इतना ही नहीं तालाब में चकवा-चकवी भी रो रहे हैं और तुम इतने निर्मोही हो गए हो कि किसी पर भी तुम्हें दया नहीं आती।

इस गीत में तुकबंदी करने के लिए शब्दों का जिस तरह प्रयोग किया गया है वह बहुत ही मधुर, प्यारा है। यथा- हरिनिया, चकइया, निरमोहिया। निरमोहिया शब्द में दो शब्द आते हैं। एक निर्मम तथा दूसरा हिया। हृदय के लिये इस शब्द का यह प्रयोग बहुत ही सुंदर है। अर्थात जिसका हिया निर्मम है, कठोर है ऐसा मेरा हिया बना मेरा पति। कितना सुंदर तथा गहरा अर्थ है इस शब्द में।

इस गीत में प्रकृति के उपादानों का मानवीकरन किया गया है। भावनाओं को हरिनी और चकवी पर आरोपित किया गया है। हरनी, चकवा को 'इया' प्रत्यय लगा कर भाषा में माधुर्य लाया गया है। कोमलकांत पदावली का प्रयोग हुआ है। "भोजपुरी में गीत को गेय बनाने के लिए शब्दों के अन्त में 'इया'

अथवा 'वा' जोड दिया करते हैं। ऐसे शब्द कोमल हो जाते हैं।"६ इस गीत में प्रिय वियोग में करुण रस की अभिव्यक्ति बडी ही मार्मिकता से व्यक्त हुई है। यह गीत करुण रस से ओतप्रोत है।

भोजपुरी में ऐसा ही एक गीत मिलता है जिसमें एक नवयौवना, मुग्धा पति से दूर है। उसके पास सब कुछ है लेकिन पति ही नहीं है, जिसके लिए वह तरस रही है-

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमकै।
धनि बारी उमरिया पिहर तरसै॥
सोने की थारी में भोजन परोसे।
खाबे वारौ बलम हाय विदेस तरसै॥
सोने के लोटे में लाई जमुना जल।
पीवै बारो बलम हाय विदेश तरसै॥
लौंग इलाइची का बीडा लगायौ।
बीदा खावै वारौ विदेस तरसै॥
चुन चुन कलियन सेजें बिछाई।
सोवे बारौ बलम हाय विदेस तरसै॥"७

इस गीत में सोने की थारी, सोने के लोटे शब्द में कल्पना की उडान के साथ-साथ उस स्त्री के परिवार की आर्थिक सधनता दिखाई देती हैं। यह स्त्री सधन घर की होते हुए भी पति विदेस गया है, जिसके मिलन के लिए वह तडप रही है। उसकी यह तडप हर पंक्ति में व्यक्त हो रही है। 'चुन चुन की कलियाँ' यह पंक्ति तो विरह का उत्कर्ष रूप दिखाती है, स्त्री की इच्छा को, उसके पति मिलन की आस को दर्शाता है। विरह में तरसी मुग्धा के वियोग श्रृंगार का वर्णन इस गीत में किया गया है।

प्रतीक शैली में अनेक लोकगीत मिलते हैं। कोई लड़की अपने मन में उठी प्रेम-भावना या श्रृंगार भावना को व्यक्त करती है तो प्रतीकात्मक शैली में ही व्यक्त करती है।

"लऊंग चुबै बाबा लऊंग चुबै, नीर चुबै आधी रात।
लऊंगा मैं विन चुन ढेर लगायो लादि चले बनजारि॥"८

इस गीत में एक नव-यौवना अपने "यौवन के स्वप्नों और कल्पनाओं को प्रस्तुत करती है, वह लौंग के नन्हें, कोमल और असंख्य फ़ूलों के प्रतीक माध्यम से व्यक्त हुई है, जिसमें स्नेह, रोमांच, सुगन्ध, कोमलता, स्निग्धता सब कुछ है। युवावस्था में अविवाहित कन्या स्वप्नों को बटोरती रहती है और विवाह होने पर अपने पति के जीवन के संघर्ष, उत्कर्ष, आनन्द, अति दु:ख के साथ मिला देती है। उपर्युक्त पंक्तियों में

इस दृष्टिकोण से बनजारि का विशेष महत्व है, क्योंकि प्रस्तुत गीत में कन्या को जो वर मिला है, वह शिव के समान भस्म रमाए हुए कठोर तपस्वी का प्रतीक है, जिसके जीवन में कुश और कंटकों के सिवा कुछ नहीं है। इस मार्मिक अनुभूति को केवल एक छोटे से प्रतीक में व्यक्त करने का प्रयास सराहनीय है।"९

शृंगार भावना का एक अन्य गीत देखिए-

"बना मेरो कुञ्जन से बनि आये-बना मेरो।
सिरे सोहै मलमल की पगिया मौरा में छबि आई-बना मेरो।
माथे सोहै मलयागिरि चन्दन सुरमा में छबि आई-बना मेरो।
काने सोहै सूरत को मोती चुन्नी में छबि आई-बना मेरो।
अंगे सोहै खासे का जोडा निमा में छबि आई-बना मेरो।
फ़ांडे सोहै गुजराती फ़ेटा लरिया छबि आई-बना मेरो।
पायँ सोहै सकलाती जूता मोजे में छबि आई-बना मेरो।"१०

अर्थात् आज मेरा बना (दूल्हा) सज-धज के कुञ्ज से आया है। सिर पर मलमल की पगडी तथा माथे पर मलयगिरी का चंदन, सुरमा शोभा दे रहा है। सूरत के मोती कानों की शोभा बढ़ा रहे हैं। चुन्नी में रूप खिल उठा है। खासे का जोडा, गुजराती फ़ेटा तथा सकलाती जोडे का श्रृंगार कर आया दूल्हा बहुत ही सुंदर दिखाई दे रहा है।

"इस गीत में दो तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो उन स्थानों के नाम, जहाँ की खास-खास चीजें मशहूर थीं। जैसे, गुजरात का फ़ेटा और सूरत के मोती।....दूसरे 'सकलाती' शब्द। यह शब्द बहुत पुराना है। पृथ्वीराज रासो में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे-

"तिनं पक्खरं पीठ हय जीन सालं।
फ़िरंगी कती पास सुकलात लालं॥

अर्थात उनके घोडों की काठियों के जीन ऊनी शाल के थे। कितने ही फ़िरंगियों के पास लाल मखमल के जीन थे।

सकलात अंग्रेजी के 'Scarlet cloth' का अपभ्रंश जान पडता है। विलायती लाल रंग का मखमल जान पडता है, जो भारत में रासो की रचना के समय ही से आने लगा था और गाँव-गाँव में अपने अपभ्रंश रूप 'सकलात' के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कागजों में 'Scarlet cloth' का जिक्र वारंवार आया है। कम्पनी का राज गया पर गीतों में उसका यह शब्द अभी तक पाया जाता है।"११ सुरमा-

अरबी शब्द, 'सकलात' अंग्रेजी 'Scarlet का अपभ्रंश है। एस गीत में एक सजे-धजे पुरुष के सौंदर्य का वर्णन है।

करुण रस का एक सोहर गीत जो हिन्दी प्रदेशों में प्राय: गाया जाता है वह है-

"छापक पेड छिउलिया त अतवन अहवर....."

इस गीत में कौशल्या रानी हरिनी को हिरन का चमडा तक देने को मना कर देती है।

"जब जब बाजै खझडिया सबद सुनि अनकइ।
हरिनी ठाढ़ि ढँकुलिया के नीचे हिरन के बिसुरइ।

अर्थात् हरिनी जब भी खँझडी की आवाज सुनती है वह ढाँक के पेड़ के नीचे खडी होकर अपने हिरन को याद करती रहती है। कितनी करुणा भरा गीत है यह! इन्सान तो इन्सान हरिनी भी अपने प्रिय पति के वियोग में विव्हल हो उठी है। "करुण रस का यह सर्वश्रेष्ठ गीत कहा जाय तो गलत नहीं होगा। कोई भी सहृदय इस गीत को सुन कर हरिनी के साथ उसकी वेदना में, दर्द में स्वयं सामिल हो जायेगा।... यह गीत सामन्तवादी युग के शासक-शासित श्रेणी के आपसी सम्बन्ध पर रोशनी डालता है।"१२ हरिनी का मानवीकरण किया गया है।

प्रकृति-सौंदर्य का गीत देखिए-

"चैत बीति जयतइ हो रामा।
तब पिया की करे अयतइ।
आरे अमुआ मोजर गेल,
फ़रि गल टिकोरवा।
डारे पाते भेल मत्तलवा हो रामा।"१३

इस गीत में वसंत ऋतु की मदमाती मस्ती तथा स्त्री की रंगीन-रंगीली भावनाओं का सौंदर्य चित्रित किया गया है। इस गीत में आम बौरा गया है अर्थात अपने यौवन पर है। स्त्री भी अपने यौवन पर है। उसके मन में भी मदन छाया हुआ है। चैत्र में सारी पृथ्वी पर बसंत ऋतु छायी रहती है। मदन-भाव का आगमन सारी सृष्टी पर हो जाता है। ऐसे में इस गोरी के पिया उसके पास नहीं हैं। इस नशीले मौसम के बीत जाने पर यदि प्रिय आते हैं तो भी क्या फ़ायदा। 'टिकोरवा' अर्थात जिसमें अभी छोटी-छोटी अमिया आयी है। यहाँ वह स्त्री अभी-अभी यौवन में पदार्पन कर चुकी है। उत्प्रेक्षा अलंकार का यह सुंदर उदाहरण है।

ऐसा ही एक रुपक अलंकार का उदाहरण है-

"अइसन कठिन कठोर सइयां भइलन मोर।
गले मायवा की डोर उ लगा के गहलन।"१४

भाषा के नाद सौंदर्य का एक अन्य उदाहरण है-

"नन्हीं नन्हीं बुंदिया बरसे भीजे मोर चोलना।
सावन घिर घिर आये जैसे बाजे बाजना।"१५

इसमें नन्हीं नन्हीं शब्द स्वयं छोटे होने का अहसास देती है फ़िर भी बुंदिया शब्द का उपयोग कर इसमें एक अलग ही सौंदर्य की वृद्धी की गई है। बुँद में 'इया' प्रत्यय लगाकर उसमें कोमलता लायी गई है। नन्हीं-नन्हीं, घिर-घिर, शब्द में एक अनुठा नाद-सौंदर्य, माधुर्य दिखाई देता है। एक रमणीय गीत है यह। इस गीत को पढ कर लगता है यह गीत पढने में इतना सुंदर है तो गाने में कितना मधुर होगा। इसमें उत्प्रेक्षा, अनुप्रास अलंकार है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि लोकगीत सहज, स्वाभाविक होने से उनमें आये छंद, अलंकार भी स्वाभाविक होते हैं। इनमें कोई छन्द, व्याकरण, अलंकार शास्त्र दिखाई नहीं देता, क्योंकि यह शिष्ट साहित्य नहीं बल्कि लोक साहित्य है। इसलिए उनमें कोई कृत्रिमता दिखाई नहीं देती। इनमें यत्र-तत्र उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष, उपमान, रुपक, अनुप्रास, शब्दालंकार, अर्थालंकार दिखाई देते हैं। ये गीत बडे ही कर्णप्रिय होते हैं। इनमें एक स्वर, एक लय होती है, जिससे एक नादसौंदर्य उत्पन्न होता है। इन्हें बार-बार गुनगुनाने की, गाने की इच्छा होती है। इनमें शब्द-चयन स्वाभाविक ही होता है जिससे वे अधिक रमणीय लगते हैं।

संदर्भ सूची

१- डॉ. सरोजिनी बाबर- 'मराठीतील स्त्रीधन', पृ.२३
२- डॉ. नांदापूरकर, भाशण, मराठवाडा साहित्य संमेलन, डिसेंबर १९५५
३- सं. सुरेश गौतम-'भारतीय लोक साहित्य कोश (खण्ड-६)', पृ. २७४०
४- सं. सुरेश गौतम- 'भारतेय लोक साहित्य कोश (खण्ड-६), पृ.२७४१
५- राहुल सांकृत्यायन, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय संपादित- 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास', पृ. १५५
६- डॉ. उपाध्याय- भोजपुरी ग्रामीण गीत भाग-१,पृ. २२३
७- डॉ. कुलदीप- 'लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन', पृ. ३३२
८- सं. सुरेश गौतम- 'भारतीय लोक साहित्य कोश (खण्ड-६), पृ. २७४७
९- सं. सुरेश गौतम- 'भारतीय लोक साहित्य कोश (खण्ड-६), पृ. २७४७

१०- सं. रामनरेश त्रिपाठी-‘ ग्राम साहित्य, पहला भाग,पहला संस्करण, पृ. ३४९
११- सं. रामनरेश त्रिपाठी-‘ ग्राम साहित्य, पहला भाग,पहला संस्करण, पृ. २५०-२५१
१२- श्रीकृष्ण दास-‘ लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या’, पृ. ३१
१३- डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय- ‘भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन’, पृ. १९५
१४- डॉ. इरशाद अली- ‘मुस्लिम लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन’, पृ. २६२
१५- डॉ. इरशाद अली- ‘मुस्लिम लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन’, पृ. २६२

****